www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-1* *January 2025***

गद्दी जनजाति के त्योहारों एवं मेलों का सांस्कृतिक महत्व

अतुल कुमार

शोधार्थी, जनजातीय अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

डॉ. रविन्द्र सिंह

रिसोर्स पर्सन, जनजातीय अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

शोध सार–

गद्दी जनजाति, जो मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश के चंबा जिले में निवास करती है, यह अपनी समृद्ध सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराओं के लिए जानी जाती है। इस शोध–पत्र में गद्दी समुदाय के प्रमुख त्योहारों और मेलों का अध्ययन किया गया है, जो उनकी धार्मिक आस्थाओं, सामाजिक संरचना और लोक संस्कृति को परिभाषित करते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में बसे इस समुदाय के लिए ये उत्सव केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि सामुदायिक मेलजोल, परंपराओं के संरक्षण और सांस्कृतिक एकता के वाहक भी हैं। इस अध्ययन में गद्दी जनजाति के प्रमुख त्योहारों जैसे ढोलरू, बसोआ, पत्रोड़ू, हैइरी, लोहड़ी, नुआला उत्सव, होली तहसील के सुटकर गांव में सायर मेला, छतराड़ी जात्रा, शिवरात्रि, भरमौर–जात्रा का विश्लेषण किया गया है। ये त्योहार ऋतु परिवर्तन, कृषि जीवन, देव–परंपराओं और ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़े होते हैं। शोध में यह स्पष्ट हुआ कि इन त्योहारों के माध्यम से गद्दी समाज अपनी पारंपरिक जीवनशैली और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने में सफल रहा है, भले ही आधुनिकता और बाहरी प्रभावों ने कुछ बदलाव लाए हों। इस अध्ययन में प्राथमिक स्रोतों (साक्षात्कार और क्षेत्रीय अध्ययन) तथा द्वितीयक स्रोतों (साहित्यिक ग्रंथ और ऐतिहासिक शोध) का उपयोग किया गया है। यह स्पष्ट होता है कि गद्दी जनजाति के त्योहार न केवल उनकी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हैं, बल्कि उनकी सामाजिक संरचना और आपसी सौहार्द को भी मजबूत करते हैं। यह अध्ययन जनजातीय संस्कृति के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

संकेत शब्द– गद्दी जनजाति, हिमाचल प्रदेश, लोकसंस्कृति, पारंपरिक त्योहार, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक धरोहर।

प्रस्तावना–

किसी भी क्षेत्र की संस्कृति, रीति–रिवाज, रहन–सहन, वस्त्राभूषण और सामाजिक व्यवहार का वास्तविक चित्रण वहां के त्योहारों और मेलों के माध्यम से देखा जा सकता है। ये पर्व न केवल उस समुदाय की धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं को सहेजते हैं, बल्कि सामाजिक संरचना और लोकजीवन की भी स्पष्ट झलक प्रस्तुत करते हैं (रणपतिया, 2010, पृ. 65)। हिमाचल प्रदेश के पर्व और उत्सव प्रायः यहां की बदलती ऋतुओं और कृषि चक्र से गहराई से जुड़े होते हैं। प्रत्येक नई ऋतु या फसल कटाई के साथ यहां उत्सव मनाने की परंपरा रही है (व्यथित, 2010, पृ. 88)। विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों में, जहां यातायात और संचार के साधन सीमित होते हैं, वहां सामूहिक मनोरंजन और सामाजिक मेलजोल के लिए मेले और त्योहार ही प्रमुख माध्यम बनते हैं। गद्दी

जनजाति के लोकजीवन में त्योहारों और मेलों का विशेष महत्त्व रहा है। दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाले इस समुदाय के लोगों के लिए ये पर्व सामाजिक मेलजोल, हास–परिहास और आपसी सौहार्द्र का माध्यम होते हैं। इन उत्सवों के दौरान लोग अपने रिश्तों को प्रगाढ़ बनाते हैं, सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं और पारंपरिक रीति–रिवाजों को जीवित रखते हैं (ब्राम्ही देवी, 2024)। गद्दी जनजाति में वर्षभर विभिन्न अवसरों पर उत्सव मनाने की परंपरा रही है। ये त्योहार संक्रांति, ऋतु परिवर्तन, फसल पकने या किसी धार्मिक स्मृति से जुड़े होते हैं। गद्दी समुदाय के प्रमुख त्योहारों में ढोलरू, बसोआ, पत्रोडू, हैइरी, लोहड़ी, शिवरात्रि और होली शामिल हैं। ये उत्सव न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रतिबिंबित करते हैं, बल्कि उनकी पारंपरिक जीवनशैली और सामाजिक संरचना का भी सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं (कुमार, पृ. 165)।

गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने में लोक–साहित्य और पारंपरिक त्योहारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विभिन्न सामाजिक आयोजनों के दौरान गद्दी लोग पारंपरिक लोकगीत गाते हैं, सामूहिक नृत्य करते हैं और अपने पारंपरिक परिधानों में सुसज्जित होकर अपनी सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करते हैं (रणपतिया, 2010, पृ. 70)। इन त्योहारों का महत्त्व केवल धार्मिक और सांस्कृतिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक एकता और पहचान से भी जुड़ा हुआ है, जिससे गद्दी समाज की परंपराएं निरंतर जीवित बनी रहती हैं। गद्दी जनजाति में मकर संक्रांति, वैशाखी, और अन्य प्रमुख संक्रांति तिथियां महत्वपूर्ण मानी जाती हैं, क्योंकि इन दिनों धार्मिक स्नान, पूजा–अर्चना, और पर्व–त्योहारों का आयोजन किया जाता है (रणपतिया, 1986, पृ. 65)। विशेष रूप से मणिमहेश यात्रा और अन्य धार्मिक आयोजनों में संक्रांति का महत्वपूर्ण स्थान है। इस परंपरा का संरक्षण और पीढ़ी दर पीढ़ी इसका पालन गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को दर्शाता है। इन आयोजनों में न केवल धार्मिक भावनाएं अभिव्यक्त होती हैं, बल्कि यह उनके सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का भी प्रतीक होते हैं।

ढोलरू–

गद्दी समुदाय का एक विशेष पर्व है, जो चौत्र मास की संक्रांति के अवसर पर मनाया जाता है। यह पर्व मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश के चंबा और कांगड़ा क्षेत्रों में मनाया जाता है। हिन्दू कैलेंडर के अनुसार, चौत्र मास से नए वर्ष की शुरुआत मानी जाती है और इसी कारण यह त्योहार वर्षभर के शुभ–अशुभ की प्रतीकात्मक मान्यता रखता है। गद्दी समाज में ढोलरू केवल एक त्योहार नहीं, बल्कि यह नई शुरुआत और पूरे वर्ष की मंगलकामनाओं का प्रतीक है। लोक–विश्वास के अनुसार, इस पर्व का उद्देश्य आने वाले वर्ष के लिए सुख–समृद्धि और शुभफल की कामना करना होता है। ढोलरू के दौरान डोम जाति के लोग घर–घर जाकर मंगलगान करते हैं। यह गीत विशेष रूप से चौत्र संक्रांति से लेकर पूरे मासांत तक गाए जाते हैं। डोम जाति के लोगों के मुख से इस महीने का नाम सुनना गद्दी समाज के लिए अत्यधिक शुभ माना जाता है (व्यथित, 2010, पृ. 88)। इस अवसर पर उन्हें उपहारस्वरूप अन्न और पुराने कपड़े दिए जाते हैं। संक्रांति की सुबह को गद्दी लोग अपने इष्ट देवी–देवताओं की पूजा करते हैं। इसके साथ ही इस दिन विशेष पकवानों का निर्माण किया जाता है। मीठे और नमकीन पकवान जैसे कि खिचड़ी, खीर आदि, परिवार के सभी सदस्यों के साथ मिलकर तैयार किए जाते हैं। इन पकवानों का सेवन पूरे परिवार के लिए आनंद और सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है। इस त्योहार से जुड़ी कई लोक–मान्यताएं और परंपराएं गद्दी समुदाय के सामाजिक जीवन में गहरी जड़ें रखती हैं। ढोलरू न केवल धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करता है, बल्कि यह सामाजिक एकता, पारंपरिक मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान को भी सुदृढ़ करता है। ढोलरू गद्दी लोकजीवन का एक अभिन्न हिस्सा है, जो न केवल समाज में खुशहाली और सौभाग्य की कामना करता है, बल्कि उनकी सांस्कृतिक धरोहर और पारंपरिक रीति–रिवाजों को जीवित रखने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बसोआ–

बसोआ गद्दी समुदाय के महत्वपूर्ण त्योहारों में से एक है जो विशेष रूप से वैशाख संक्रांति के दिन बड़े हर्षोल्लास और उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस दिन घर–घर में खिचड़ी, खीर, बब्बरू और थोपलू जैसे विशेष पकवान बनाए जाते हैं लेकिन सबसे महत्वपूर्ण व्यंजन पिंदड़ी होता है। पिंदड़ी को विशेष रूप से त्योहार से तीन दिन पहले कोदो के आटे की टिक्कियां बनाकर तैयार किया जाता है जिन्हें लस्सी से छिड़क कर पत्तों से ढक दिया जाता है। तीन दिन बाद यह टिक्कियां खट्टी हो जाती हैं और संक्रांति वाले दिन इन्हें गुड़ और शहद के साथ खाया जाता है। इस पर्व पर विवाहित बेटियों को मायके बुलाने का विशेष रिवाज है, जिससे पारिवारिक संबंधों में सुदृढ़ता आती है। श्री अमर सिंह रणपतिया जी के अनुसार, इस त्योहार की तैयारियां पन्द्रह

से बीस दिन पहले शुरू हो जाती हैं (रणपतिया, 1986, पृ. 65)। जिन गद्दी परिवारों को घुमंतू जीवन की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता, उनके घरों में इस त्योहार की उमंग अधिक दिखाई देती है। लड़कियां समूह में इकट्ठा होकर रात भर लोकगीत 'घुरैही' गाती हैं, जिससे पूरा वातावरण उत्साह और सांस्कृतिक रंग से भर जाता है। 'पिंदड़ी' गाने से त्योहार की शुरुआत होती है जिसमें एक दुःखी बहन की मार्मिक कहानी प्रस्तुत की जाती है। यह गीत मायके के मोह और ससुराल में मिलने वाली कठिनाइयों का भावनात्मक चित्रण करता है (व्यथित, 2010, पृ. 90) । यह लोकगीत गद्दी समाज के सामाजिक और भावनात्मक पहलुओं का सजीव प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है जो उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन की सच्चाई को व्यक्त करता है। उदाहरणस्वरूप, इस त्योहार में गाए जाने वाले गीत के बोल हैं–

'बसन्दु ता फुल्लै माए धामी–घुमे रित आइया सुंघड़ौणी हो, अम्मा ता मेरिए कुण तुहार आया होष
चिड़ी ता लगी बरहीड़ी लगी, कूकू लगा दरुआरै ओ। आया बसोआ धैड़े पंजै–सत्तै,
मुंजो लगी पैड्ऐ हीड़ी ओ। मुंजो लगी पैइऐ हीड़ी ओ।
अम्मा जो बोलणा बेदर्दी जो, मुंजो बापू सादा किना भेजू ओ।
बापू ता तेरा कुलिऐ भेड़ा रा पाहल,भाई न हलकड़े–याणै ओ।
ताई जो बोलणा बेदर्दी जो,ताऊ सादा किना भेजू ओ।
ताऊ ता तेरा धीऐ बिरधा–सियाणा,तैइर न भेडा रे पाहल ओ।
कातण कातंदिऐ सासो मेरै,मुंजो पैइऐ जोगी भेजें ओ।
पिंदड़ी ता पिंदड़ी सासो अप्पू खाऐ, पिंदड़ी रै पट्ठ मुंजो दित्तै ओ।
अप्पू खाऐ, गुड़–गुड़ार्णी सासो ढिब्बू–छलाणी मिंजो दित्ता ओ।
लैङ्या ता लैङ्या मेरै तिम्बरा रै सोठे, सारी पैइऐ री हादरा चुकानी ओ।
इल्ली ता इल्ली माए चिड़ी बणी, चौला चुग्गी–चुग्गी खाली ओ।
इल्ली ता इल्ली माए बिल्ली बणी तेरी लौणी रै अरै–परै फिरली ओ'(ब्राम्ही देवी, 2024)।

यह लोकगीत गद्दी समुदाय की पारंपरिक संस्कृति, भावनाओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को बड़े ही मार्मिक और सरल ढंग से अभिव्यक्त करता है। गीत में ग्रामीण और पहाड़ी जीवन का सजीव चित्रण मिलता है जिसमें विशेष रूप से स्त्री जीवन, परिवार, और समाज के रिश्तों की गहराई को दिखाया गया है। गीत की शुरुआत चिड़ी ता लगी बरहीड़ी लगी, कूकू लगा दरुआरै ओष जैसे बोलों से होती है, जिसमें प्राकृतिक वातावरण और पक्षियों की ध्वनि के माध्यम से गाँव की सुबह या वातावरण का वर्णन किया गया है। यह गीत मौसम और समय का संकेत देता है, जो बसोआ त्योहार की शुरुआत से जुड़ा है।

इसके बाद आया बसोआ धैड़े पंजै–सत्तै में बसोआ त्योहार का आगमन बताया गया है, जो खुशी और तैयारी का प्रतीक है। यहां मुंजो लगी पैड्ऐ हीड़ी ओ की पंक्ति किसी प्रतीक्षा या अतीत की यादों को दर्शाती है, संभवतः किसी प्रियजन के आगमन या उससे जुड़ी भावनाओं को। गीत में पारिवारिक रिश्तों और संवादों का चित्रण भी बहुत दिलचस्प है। अम्मा जो बोलणा बेदर्दी जो और ताऊ ता तेरा धीऐ बिरधा–सियाणा जैसे संवादों से गहराई से रिश्तों के ताने–बाने को व्यक्त किया गया है। इन पंक्तियों में भावनात्मक पीड़ा और अपनों से जुड़े संघर्ष की झलक मिलती है, विशेषकर शादीशुदा बेटी और उसके मायके–ससुराल के बीच की खींचतान। इसके अलावा, पिंदड़ी ता पिंदड़ी सासो अप्पू खाऐ में पिंदड़ी की महत्ता को दर्शाया गया है, जो गद्दी समाज का एक विशेष पकवान होता है और त्योहारों पर इसे बड़े प्रेम से बनाया और खाया जाता है। यहां सास–बहू के रिश्तों की नोकझोंक और मजाकिया संवाद भी परिलक्षित होता है। अंत में इल्ली ता इल्ली माए चिड़ी बणी और षबिल्ली बणी तेरी लौणी रै अरै–परै फिरली ओष जैसी पंक्तियां गीत में जानवरों और उनके व्यवहार के माध्यम से जीवन के संघर्षों और जीवन की सच्चाइयों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं। समुदाय में बसोआ से सम्बंधित एक अन्य लोकगीत जो गद्दी समुदाय की गहरी सांस्कृतिक और भावनात्मक जड़ों से जुड़ा हुआ है, जो न केवल उनकी परंपराओं, बल्कि उनके सामाजिक जीवन की झलक भी प्रस्तुत करता है। गीत में व्याप्त भावनाएं गद्दी समाज की दैनिक जिंदगी, उनके पर्व–त्योहारों, रिश्तों और नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं।

डुग्गी मेरी ढाकनी री बाईं हो.....

ऊंची मेरी मंगले री रेहड़ी हो.....
किया तोड़ा पैरा केरी बेड़ियां
चंबे जो चली जाणा हो....
किया तोड़ा पैरा केरी बेड़ियां
चम्बे जो चली जाणा हो....
लोहड़ी दुस्सेरे जो मत भेजो सस्सु जी
मिंजरा रे मेले जो मत भेजो सस्सू जी
मिंजरा रे मेले जो मत भेजो सस्सु जी...
बसोआ ता मैं पीयोके मनाणा हो.....
चम्बे जो चली जाणा हो.....
बसोआ ता मैं पीयो के मनाणा हो..
चम्बे जो चली जाणा हो....
चौंडी रे देहरे धूपा जे लागियां ..
सूई केरे मढ़ा पर गद्दणा जे नचियां ...
सूई केरे मढ़ा पर गद्दणा जे नचियां ..
पिंदरी रा गीत असा लाणा हो ....
चम्बे जो चली जाणा हो...
पिंदरी रा गीत असा लाणा हो....
चम्बे जो चली जाणा हो..
डुग्गी मेरी ढाकनी री बाईं हो.....
ऊंची मेरी मंगले री रेहड़ी हो.....
किया तोड़ा पैरा केरी बेड़ियां
चंबे जो चली जाणा हो....
किया तोड़ा पैरा केरी बेड़ियां
चम्बे जो चली जाणा हो.... (ब्राम्ही देवी, 2024)।

गीत में डुग्गी मेरी ढाकनी री बाईं हो और ऊंची मेरी मंगले री रेहड़ी होष जैसी पंक्तियों के माध्यम से गद्दी समाज के कठिन पहाड़ी जीवन का वर्णन मिलता है जहां ऊँचाई और दुर्गम स्थल जीवन का हिस्सा हैं। षकिया तोड़ा पैरा केरी बेड़ियां, चंबे जो चली जाना हो यह पंक्ति किसी के घर लौटने की भावना को दर्शाती है, जो पर्व और त्योहारों के समय मायके लौटने या अपने प्रियजनों से मिलने की इच्छा का प्रतीक है। गीत की दूसरी पंक्तियों में लोहड़ी दुस्सेरे जो मत भेजो सस्सु जी और बसोआ ता मैं पीयोके मनाना होष जैसी भावनात्मक अभिव्यक्तियां विवाहिता स्त्रियों की ससुराल और मायके के बीच की खींचतान और अपनी इच्छाओं की झलक देती हैं। विशेषकर नवविवाहिता अपनी सास से कहती है लोहड़ी और दशहरे को मुझे बेशक भेजना बसोआ मैंने अपने मायके में मनाना है। बसोआ का उल्लेख त्योहार के महत्व और उसे अपने ससुराल या मायके में मनाने की दिलचस्प दुविधा को प्रकट करता है। पिंदरी रा गीत असा लाना हो गीत में पिंदड़ी एक पकवान की महत्ता और उसकी लोकसंस्कृति में गहरे जुड़ाव को दर्शाता है। इन गीतों में नारी जीवन की पीड़ा, मायके की याद, और ससुराल में झेली गई कठिनाइयों का मार्मिक चित्रण होता है। विशेष रूप से पिंदड़ी गीत का वैशाख–संक्रांति से गहरा भावनात्मक संबंध है, जो इस त्योहार को गद्दी समुदाय में और भी अधिक लोकप्रिय बनाता है। यह पर्व न केवल पारंपरिक पकवानों और रीतियों का उत्सव है बल्कि यह लोकगीतों और संगीत के माध्यम से गद्दी समाज के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है। इस प्रकार, बसोआ त्योहार गद्दी समाज की सांस्कृतिक और संगीतात्मक धरोहर का अभिन्न हिस्सा है, जो उनके जीवन में उल्लास और सांस्कृतिक पहचान को प्रकट करता है।

पत्रोडू

गद्दी समुदाय के महत्वपूर्ण त्योहारों में से एक है, जिसे भादो–संक्रांति के दिन मनाया जाता है। इस अवसर पर गद्दी परिवारों में खासतौर पर पत्रोडू , बबरु, और अन्य पारंपरिक व्यंजन बनाए जाते हैं। ष्इस दिन गद्दी लोगों के घरों में भुज्जी के पत्तों पर गेहूँ का आटा, नमक और बेसन का घोल मलकर तेल में श्पत्रोड़श तले जाते हैं। इसके साथ बबरु भी पकाए जाते हैं। इस दिन इष्ट–मित्रों और बहनों को आमंत्रित कर सामूहिक रूप से पत्रोड़ खाने की परंपरा है। संक्रांति की पूर्व संध्या, यानी मासांत पर भी विशेष पकवान बनाने की प्रथा है। खासकर, ष्मसंत की रात को बोबरु और सुबह संक्रांति के दिन थोपलू जैसे स्थानीय व्यंजन बनाए जाते हैं (रणपतिया, 2010, पृ. 70)। भादो मास में पितृ–आगमन की मान्यता भी गद्दी समाज में गहरी है। इस दिन से पितरों के लिए श्बत–प्रगड़ीश (रूई या दीपक) जलाने की प्रथा होती है। रात के समय, आंगन में रूई या कपड़े की बनी बत्ती को तेल में भिगोकर जलाया जाता है, ताकि पितरों के मार्ग को रोशन किया जा सके और वे आसानी से घर आ सकें। यह रिवाज गद्दी समाज में पितृ–श्रद्धा और परिवार की परंपराओं का एक सजीव उदाहरण है।

हैइरी

असौज मास की संक्रांति के अवसर पर मनाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण फसली त्योहार है, जो गद्दी समुदाय में बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। यह त्योहार विशेष रूप से फसल पकने के बाद मनाया जाता है, जब स्थानीय फसलें राजमाह, चौला, अखरोट और मक्की, पूरी तरह तैयार हो जाती हैं। इस दिन की शुरुआत सुबह नहा–धोकर देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना से होती है। पूजा में मुख्य रूप से अन्न, जैसे मक्की के भुट्टे, देवी–देवताओं को अर्पित किए जाते हैं (रणपतिया, 2010, पृ. 70)। इसके बाद परिवार और इष्ट मित्रों को आमंत्रित कर सामूहिक रूप से पारंपरिक पकवान, जैसे बब्बरू, खीर और थोपलू आदि तैयार किए जाते हैं, और सभी मिलकर इनका आनंद लेते हैं।इस त्योहार का एक और महत्वपूर्ण पहलू है बैलों की पूजा। इस दिन गौशाला में जाकर बैलों की पूजा की जाती है क्योंकि फसल की उपज में उनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। पूजा में थोड़े–से अन्न को गौशाला में ले जाकर अर्पित किया जाता है। हैइरी त्योहार के दौरान शरद ऋतु के आगमन का भी अनुभव होता है, और इस त्योहार को शरद ऋतु के स्वागत के रूप में भी मनाया जाता है।

लोहड़ी

यह त्योहार गद्दी समुदाय में बड़े हर्षोल्लास और उत्साह के साथ मनाया जाता है। यह त्योहार गद्दियों के सबसे महत्वपूर्ण पर्वों में से एक है, जिसमें बसोआ और लोहड़ी का विशेष स्थान है। लोहड़ी पौष मास के अंत में मनाई जाती है (रणपतिया, 2010, पृ. 70) । यद्यपि कई गद्दी लोग इस समय अपने घरों से दूर चम्बा, भट्टियात या कांगड़ा में होते हैं, फिर भी वे जहां भी हों, इस त्योहार को पूरे उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाते हैं। लोहड़ी की संध्या को लोग विशेष स्थानीय पकवान तैयार करते हैं और भोजन के बाद चूल्हे में आग जलाते हैं। इस अग्नि में तिल, चावल, गुड़, अखरोट आदि श्रद्धा के साथ अर्पित किए जाते हैं (रणपतिया, 1986, पृ. 65)। यह एक धार्मिक अनुष्ठान है, जिसमें सभी लोग अग्नि के समक्ष प्रार्थना करते हैं कि ष्हर वर्ष इसी प्रकार सुख–शांति के साथ यह त्योहार आए।ष अगली सुबह, मकर संक्रांति के दिन, लोग प्रातःकाल स्नानादि कर खिचड़ी बनाते हैं फिर इसे अपने सभी देवी देवताओं को चढ़ाते है। इसके बाद इस खिचड़ी को परिवार के सभी सदस्यों और विशेष रूप से बहु–बेटियों को आमंत्रित कर सामूहिक रूप से खाया जाता है। पितरों को भी खिचड़ी अर्पित की जाती है, जिससे यह त्योहार न केवल सामाजिक बल्कि धार्मिक दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। खिचड़ी के साथ दूध, दही, और घी का सेवन किया जाता है, जो सामूहिक भोजन की परंपरा को और भी समृद्ध बनाता है।

शिवरात्रि

गद्दी समुदाय का एक विशेष और महत्वपूर्ण त्योहार है, जिसे लोहड़ी के पश्चात् बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन गद्दी लोग प्रातः स्नान करके शिव मंदिर में जाते हैं और भगवान शिव को सेब व अखरोट अर्पित करते हैं। गद्दी समाज भगवान शंकर को अपना इष्ट देव मानता है और भरमौर को शिव–भूमि के रूप में आदर करता है। इस दिन लोग दिनभर व्रत रखते हैं और रात को खिचड़ी और दाल–भात का भोजन करते हैं। रातभर जागरण करते हुए, गद्दी लोग ऐचली गाते हैं और नुआला के रूप में भगवान शिव की स्तुति करते हैं। इस जागरण में शिव–स्तुति के गीत गाए जाते हैं। गद्दियों का यह विश्वास है कि शिवरात्रि के बाद भगवान शिव अपनी झोली

पृथ्वी पर झाड़ते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कीड़े–मकोड़े पृथ्वी से निकलना शुरू हो जाते हैं। इस मान्यता के अनुसार, शिवरात्रि के बाद प्रवासी गद्दियों को अपनी जन्मभूमि भरमौर की याद सताने लगती है और वे चम्बा, भट्टियात और कांगड़ा से लौटने की तैयारियां करने लगते हैं (रणपतिया, 1986, पृ. 66)।

जात्राएं एवं मेले

त्योहारों की तरह गद्दी समाज में मेलों का भी सांस्कृतिक जीवन में गहरा महत्त्व है। भरमौर में श्मेलाश का अर्थ जात्रा (यात्रा) से होता है। श्री अमर सिंह रणपतिया जी के अनुसार, भरमौर के जनजातीय लोगों द्वारा विभिन्न तिथियों पर देवालयों में मेले आयोजित किए जाते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख मेलों में भरमौर जात्रा, मणिमहेश–न्होण, छतराड़ी जात्रा, रणहू कोठी, इन्द्रनाग की जात्रा कुवारसी, सुटकर, चन्हौता , कुगति केलंग की जात्रा और कुलेठ तथा बन्नी भगवती की जात्रा शामिल हैं (रणपतिया, 1986, पृ. 71)।

भरमौर–जात्रा

एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और धार्मिक आयोजन है जो जन्माष्टमी के दूसरे दिन से शुरू होकर पूरे सप्ताहभर चलता है। इस जात्रा का सभी उम्र के लोग विशेषकर स्थानीय बाल–बालिकाएं और वृद्धजन, बड़ी उत्सुकता से इंतजार करते हैं। जन्माष्टमी के दिन से ही भरमौर में उत्सव का माहौल बनने लगता है। भगवान नरसिंह के मंदिर को सजाया जाता है लोग व्रत रखते हैं और रातभर जागरण किया जाता है। मणिमहेश झील पर भी इस दिन एक छोटा मेला लगता है जिसे स्थानीय भाषा में जोगन्हौण कहा जाता है।

जन्माष्टमी के दूसरे दिन से भरमौर में विभिन्न गाँवों और क्षेत्रों से जात्राएं आना शुरू हो जाती हैं। चौरासी–प्रांगण में सप्ताहभर अस्थाई बाजार लगता है जहां दूर–दूर से लोग आकर इस धार्मिक आयोजन में भाग लेते हैं। यहां आकर उपस्थित होना धार्मिक कृत्य माना जाता है। स्थानीय युवक–युवतियां, नर–नारी, और वृद्धजन अपने पारंपरिक और रंग–बिरंगे वस्त्राभूषणों में सजे–धजे होकर चौरासी–प्रांगण में नृत्य करते हैं। यहां परंपरा अनुसार भीतरी मंडल में स्त्रियां और बाहरी मंडल में पुरुष नृत्य करते हैं। इस जात्रा में काहल, रणसिंगा, ढोलक, शहनाई, नगारों जैसे लोक वाद्यों के साथ ऐचली गाए जाते हैं जो स्थानीय लोकगीतों का एक प्रकार है। इन संगीतमयी धुनों से पूरा वातावरण पूरे सप्ताह तक गूंजता रहता है। इस उत्सव के दौरान स्थानीय लोगों की वस्त्राभूषण संबंधी अभिरुचियां भी दिखाई देती हैं क्योंकि वे इस अवसर पर अपने पारंपरिक परिधान और आभूषण पहनकर उत्सव में भाग लेते हैं। भरमौर–जात्रा न केवल धार्मिक महत्त्व रखती है बल्कि यह गद्दी समुदाय की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक भी है जिसमें नृत्य, संगीत, और पारंपरिक परिधान प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

मणिमहेश न्हौण (जात्रा)

गद्दी समुदाय और दूर–दराज के श्रद्धालुओं के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण तीर्थ यात्रा और उत्सव है। मणिमहेश न केवल गद्दियों के लिए बल्कि अन्य क्षेत्रों के श्रद्धालुओं के लिए भी एक प्रमुख तीर्थ स्थल माना जाता है। गद्दी समुदाय का यह दृढ़ विश्वास है कि उनके इष्ट देव भगवान शंकर मणिमहेश के कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं। मणिमहेश यात्रा विभिन्न मार्गों से की जाती है जिनमें से प्रत्येक का अपना धार्मिक और भौगोलिक महत्त्व है। लाहौल–स्पीति के तीर्थयात्री कुगति पास के माध्यम से मणिमहेश पहुँचते हैं जबकि कांगड़ा और मंडी के कुछ तीर्थयात्री कवारसी या जालसू पास के माध्यम से यात्रा करते हैं। सबसे सरल और सामान्य मार्ग चम्बा से भरमौर होकर जाता है। वर्तमान में बस सेवाएं तीर्थयात्रियों को हड़सर तक ले जाती हैं जहां से पैदल यात्रा शुरू होती है। हड़सर और मणिमहेश के बीच एक महत्वपूर्ण पड़ाव धनछो है जहां तीर्थयात्री आमतौर पर रात बिताते हैं। यह स्थान अपने सुंदर झरने के लिए प्रसिद्ध है, जो प्राकृतिक सौंदर्य और आध्यात्मिक शांति का प्रतीक है। मणिमहेश झील से लगभग एक किलोमीटर पहले दो धार्मिक जलाशय हैंरू गौरी कुंड और शिव क्रोत्री। लोकप्रिय मान्यताओं के अनुसार देवी पार्वती (गौरी) और भगवान शिव ने यहां स्नान किया था। मणिमहेश झील की यात्रा शुरू करने से पहले महिला तीर्थयात्री गौरी कुंड में और पुरुष तीर्थयात्री शिव क्रोत्री में पवित्र स्नान करते हैं। यह स्नान धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह तीर्थयात्रियों की यात्रा को पवित्र और सफल बनाने का प्रतीक होता है। श्री अमर सिंह रणपतिया जी के अनुसार, ष्न्हौणष का अर्थ रातभर जागरण करने के बाद प्रातःकाल स्नान करने से है। यह उत्सव मुख्यतः भाद्रपद के राधाष्टमी और जन्माष्टमी के अवसर पर मनाया जाता है। जन्माष्टमी राधाष्टमी से पहले आती है, और इसलिए जन्माष्टमी का मेला वर्षा–ऋतु में पड़ता है। इस आयोजन में देश के दूर–दूर से श्रद्धालु आते हैं विशेषकर साधु–संत और भद्रवाह क्षेत्र के लोग बड़ी

संख्या में इसमें भाग लेते हैं।

कृष्णाष्टमी और राधाष्टमी के बीच 10–15 दिनों का अंतर होता है और इस कारण से इन तिथियों के अनुसार यात्रा के दौरान मौसम में बदलाव देखा जाता है। जिस वर्ष जन्माष्टमी के न्हौण में ठंड अधिक होती है उस वर्ष श्रद्धालुओं की भीड़ जन्माष्टमी पर अधिक होती है। वहीं यदि राधाष्टमी जल्दी आती है और मौसम गर्म होता है तो राधाष्टमी पर अधिक भीड़ देखी जाती है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2024 में मणिमहेश यात्रा में भरमौर क्षेत्र में इस वर्ष 26 अगस्त से 11 सितंबर तक मणिमहेश यात्रा आयोजित की गई थी। हालांकि, यात्रा के आधिकारिक समापन के बाद भी श्रद्धालु लगातार यहां आ–जा रहे हैं। इस वर्ष यात्रा में क़रीब सात लाख श्रद्धालु मणिमहेश झील के दर्शन के लिए पहुँचे थे (जिला प्रशासन चंबा, 2024)।

यह तीर्थयात्रा गद्दी समुदाय के साथ–साथ देश के अन्य हिस्सों के श्रद्धालुओं के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक आयोजन है। यात्रा की शुरुआत से पहले श्रद्धालु भरमौर में स्थित मणिमहेश मंदिर में भगवान शंकर की आज्ञा लेते हैं। भरमौर से करीब आठ मील दूर स्थित हड़सर नामक गाँव पहला पड़ाव होता है जहां लोग संध्या को एकत्रित होकर भजन, कीर्तन और जयकारे करते हुए रात बिताते हैं। अगली सुबह श्धनछोश नामक निर्जन स्थान की ओर प्रस्थान करते हैं जहां दूसरी रात बिताई जाती है। तीसरे दिन लोग श्बन्दरघाटीश और श्भैरोंघाटीश पार कर मणिमहेश झील और कैलाश पर्वत के दर्शन करते हैं। श्रद्धालु पूरी रात जागकर भगवान शिव की स्तुति करते हैं और सुबह मणिमहेश झील में स्नान करते हैं। यदि मौसम अच्छा रहता है तो इसे शिवजी की कृपा मानी जाती है जबकि मौसम खराब होने पर बर्फबारी को सामान्य घटना माना जाता है। इस प्रकार यह महा उत्सव भक्तों के लिए एक अद्वितीय तीर्थ अनुभव के रूप में सम्पन्न होता है।

छतराड़ी जात्रा–

मणिमहेश जात्रा के बाद छतराड़ी जात्रा शुरू होती है, जो तीन दिन तक चलती है। इस दौरान मणिमहेश झील का पानी लाकर शिव–शक्ति को स्नान कराया जाता है, और स्थानीय लोग पारंपरिक वेश–भूषा में नृत्य करते हैं। इसी तरह कुगति के केलंग मंदिर में असौज और भादो संक्रांति को जात्राएं आयोजित होती हैं, जिसमें सैकड़ों श्रद्धालु भाग लेते हैं। भादो संक्रांति के दिन कई गाँवों और पहाड़ी क्षेत्रों के धार्मिक स्थलों पर भी जात्राएं आयोजित होती हैं (क्षेत्र अध्ययन 2024)। इसके अलावा, कई छोटे मंदिरों में भी जात्राएं होती हैं, जो गद्दियों की धार्मिक प्रवृत्ति और पारंपरिक रीति–रिवाजों का प्रतिबिंब हैं। भरमौर क्षेत्र के अधिकांश मेले और जात्राएं धार्मिक उद्देश्यों से आयोजित की जाती हैं। इन आयोजनों के दौरान गद्दी समुदाय की धार्मिकता, पारंपरिक वस्त्राभूषण, मनोरंजन और लोक–परंपराएं सहज रूप से प्रदर्शित होती हैं। इन जात्राओं के माध्यम से गद्दी समुदाय अपनी संस्कृति और परंपराओं को जीवित रखता है, और यह मेल–जोल, धार्मिक आस्था और पारिवारिक संबंधों को मजबूत करने का एक माध्यम होता है।

होली तहसील के सुटकर गांव में सायर मेला–

सुटकर गांव होली तहसील में हर साल बड़े हर्षोल्लास के साथ सायर मेला मनाया जाता है। यह दो दिवसीय मेला क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर और परंपराओं को सहेजने का प्रमुख माध्यम है। सायर मेले में खेलकूद प्रतियोगिताएं, जैसे कुश्ती, दौड़, रस्साकशी, और कबड्डी, ग्रामीणों के बीच बहुत लोकप्रिय होती हैं। इसके अलावा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के तहत लोक नृत्य और गीतों का प्रदर्शन भी किया जाता है जिनमें गद्दी नृत्य प्रमुख है। इन सांस्कृतिक प्रस्तुतियों में लोग पारंपरिक परिधान पहनकर नृत्य करते हैं जिससे मेले की शोभा और भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त चन्हौता, लामू, क्वार्सी, कुलेठ, तयारी, उलांसा, दयोल में मनाया जाने वाला बांढा उत्सव और भी अन्य गांव में मेलों और जातारों का आयोजन किया जाता है जिसमें गद्दी समुदाय बढ़ चढ़ कर भाग लेता है (क्षेत्र अध्ययन 2024)।

नुआला उत्सव–

नुआला गद्दी समाज में अत्यधिक महत्वपूर्ण धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा है जिसे भगवान शिव की आराधना के लिए मनाया जाता है। यह उत्सव मुख्य रूप से नए मकान के निर्माण, विवाह या अन्य शुभ अवसरों पर आयोजित किया जाता है। नुआला शब्द की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। कुछ इसे श्नव–आलयश (नया घर) से जोड़ते हैं जो यह दर्शाता है कि यह उत्सव नए घर के निर्माण पर मनाया जाता है। जबकि कुछ विद्वान इसे नौ व्यक्तियों से जुड़े अनुष्ठान के रूप में देखते हैं जिन्हें आयोजन के लिए विशेष

जिम्मेदारियां दी जाती हैं। इन नौ प्रमुख व्यक्तियों में जजमान (जो पूजा करवाता है) जोगी (जो माला और पूजा सामग्री जुटाता है) पुरोहित (जो पूजा का संचालन करता है) कोटवाल, बटवाल और चार बंदे (गायक) शामिल होते हैं। ये सभी नुआला उत्सव के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

नुआला पूजा के दौरान एक मंडप तैयार किया जाता है, जिसे गद्दी बोली में श्मंदलश कहा जाता है। यह मंडप सूखे आटे से बनता है, जिसमें कहीं 32, कहीं 36, और कहीं 84 कोठे (खंड) बनाए जाते हैं (रणपतिया, 1986, पृ. 85)। हर कोठे में तिल, चावल, बड़े (उड़द की दाल से बने पकवान) और बबरु (एक प्रकार का पकवान) रखे जाते हैं, जो पूजा की सामग्री के रूप में उपयोग होते हैं। बलि प्रथा भी इस पूजा का एक हिस्सा रही है जिसमें ऊन वाले पशु, विशेषकर मेंढे की बलि दी जाती थी, जिसे श्उनाळाश कहा जाता है। बलि की इस प्रथा से भी नुआला शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। वर्तमान में इस कहीं कहीं बलि के स्थान पर नारियल को पूजा सामग्री में शामिल किया जाता है।

यह उत्सव पूरी रात चलता है जिसमें चार बंदे शिवजी की स्तुति में भजन गाते हैं और महिलाएं घुरैही गीत गाती हैं। पूरी रात शिवजी की स्तुति में भक्ति गीत गाए जाते हैं जिन्हें शिवीण लोकगीत कहा जाता है। इन गीतों के माध्यम से भगवान शिव के प्रति गहरी आस्था और भक्ति प्रकट की जाती है। नुआला उत्सव में चार बंदे, कोटवाल, बटवाल, जोगी और पुरोहित को नए वस्त्र या कम से कम एक साफा (तौलिया) दिया जाता है। परंपरागत रूप मई पूजा समाप्त होने के बाद अगले दिन सुबह एक भोज का आयोजन होता था वर्तमान में शाम को ही भोज दिया जाता है जिसमें सभी रिश्तेदारों, मित्रों और पड़ोसियों को आमंत्रित किया जाता है। नुआला उत्सव गद्दी समाज में न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है बल्कि यह उनकी सामाजिक एकता, सामूहिकता और पारंपरिक संस्कृति को भी जीवित रखता है(रणपतिया, 1986, पृ. 87)। यह उत्सव गद्दी समुदाय की विशिष्ट पहचान को दर्शाता है और उनकी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

निष्कर्ष

गद्दी जनजाति के त्योहार और मेले सांस्कृतिक पहचान, धार्मिक आस्था और सामाजिक एकता के प्रतीक हैं। ये आयोजन केवल मनोरंजन और धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामुदायिक समरसता, परंपराओं के संरक्षण और लोकसंस्कृति के संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ढोलरू, बसोआ, पत्रोडू, हैइरी, लोहड़ी, शिवरात्रि और होली जैसे त्योहार गद्दी समाज की पारंपरिक जीवनशैली और रीति–रिवाजों को संरक्षित करने का माध्यम हैं। इन उत्सवों में खेलकूद प्रतियोगिताएं, लोकगीत, गद्दी नृत्य और धार्मिक अनुष्ठान न केवल सांस्कृतिक धरोहर को जीवंत रखते हैं बल्कि सामाजिक सहयोग और आर्थिक गतिविधियों को भी बढ़ावा देते हैं। विशेष रूप से दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में, जहां संचार और यातायात की सीमित सुविधाएं हैं वहां ये मेले और त्योहार समुदाय के लिए एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करते हैं। आधुनिकता के प्रभावों के बावजूद यदि इन पारंपरिक आयोजनों का संरक्षण और संवर्द्धन किया जाए तो यह गद्दी जनजाति की सांस्कृतिक समृद्धि और सामाजिक संरचना को सुदृढ़ करने में सहायक होगा।

संदर्भ–

1. अमर सिंह रणपतिया, गद्दी भरमौर की लोक संस्कृति एवं कलाएं, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, 2010।
2. डॉ. गौत्तम शर्मा व्यथित, हिमाचल प्रदेश लोक–संस्कृति और साहित्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
3. डॉ. गौत्तम शर्मा व्यथित, हिमाचल प्रदेश लोक–संस्कृति और साहित्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
4. अमर सिंह रणपतिया, गद्दी भरमौर की लोक संस्कृति एवं कलाएं, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, 2010।
5. अमर सिंह रणपतिया, हिमाचली लोक–साहित्य (गद्दी जनजाति के संदर्भ में), सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986।
6. साक्षात्कार– ब्राह्मी देवी, गाँव चन्हौता , तहसील होली, जिला चम्बा, हिमाचल प्रदेश, जुलाई 2024 ।
7. कुमार, नंद,गद्दी जनजीवन– ऐतिहासिक एवं सामाजिक परंपरा, बंधु –भारती प्रकाशन, सेक्टर–17, चंडीगढ़, 1983।

8. जिला प्रशासन चंबा, (2024), मणिमहेश यात्रा 2024, हिमाचल प्रदेश सरकार। miyCèk: https:hpchambanic-inhief.kegs'k&;k=k@।
9. क्षेत्र अध्ययन, जुलाई (2024).

Cite this Article-

'अतुल कुमार, डॉ. रविन्द्र सिंह', 'गद्दी जनजाति के त्योहारों एवं मेलों का सांस्कृतिक महत्व' Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:01, January 2025.

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/
DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i1005
Published Date- 08 January 2025